

हमारी द्रव्य-पूजाका रहस्य

पूजाका अर्थ भक्ति, सत्कार या सम्मान होता है और वह छोटों द्वारा बड़ों (पूज्यों) के प्रति प्रकट किया जाता है। इसका मूल कारण पूजकको अपनी लघुता और पूज्यकी महत्ताको स्वीकार करना है तथा उद्देश्य अपनी लघुताको नष्ट कर पूज्य जैसी महत्ताकी प्राप्तिमें प्रयत्न करना है। इसके प्रकट करनेके साधन मन, वचन और काय तो हैं ही, परन्तु कहीं-कहीं बाह्य सामग्री भी इसमें साधनभूत हो जाया करती हैं। जहाँ पर मन, वचन और कायके साथ-साथ बाह्य सामग्री इसमें साधनभूत हो, उसका नाम द्रव्यपूजा है तथा जहाँ केवल मन, वचन और कायसे ही भक्ति-प्रदर्शन किया जाय उसे भावपूजा समझना चाहिए। वैसे जो मनके द्वारा भक्तिप्रदर्शन भावपूजा तथा वचन और कायके द्वारा भक्तिप्रदर्शन द्रव्यपूजा कही जा सकती है, परन्तु यहाँपर इस प्रकारकी द्रव्यपूजा और भावपूजाकी विवक्षा नहीं है। शास्त्रोंमें जो द्रव्यपूजा और भावपूजाका उल्लेख आता है वह क्रमसे बाह्य सामग्रीकी अपेक्षा और अनपेक्षामें ही आता है।

उल्लिखित द्रव्यपूजाका लोकव्यवहारमें समावेश तो परंपरागत कहा जा सकता है। अपनेसे बड़े पुरुषोंको उनकी प्रसन्नताके लिये उत्तमोत्तम सामग्री भेंट करना शिष्टाचारमें शामिल है। भगवदाराधनमें भी कबसे इसका उपयोग हुआ, इसकी गवेषणा यद्यपि ऐतिहासिक दृष्टिसे की जा सकती है। लेकिन यहाँपर इसकी आवश्यकता नहीं है, यहाँ तो सिर्फ इस बातको प्रकट करना है कि हमारे यहाँ ईश्वरोपासनमें द्रव्यपूजाका जो प्रकार है वह किस अर्थको लिये हुए है। यद्यपि मेरे विचारोंके अनुसार शास्त्रोंमें स्पष्ट उल्लेख तो जहाँ तक है, नहीं मिलता है। परन्तु पूजापाठोंके अवतरण, अभिषेक व जयमाला आदि भागोंमें, मेरे इन विचारोंका आभास जरूर है। और फिर यह तो ध्यानमें रखना ही चाहिये कि जो विचार युक्ति और अनुभव विरुद्ध नहीं, वे शास्त्रबाह्य नहीं कहे जा सकते। इसी विचारसे मैं अपने विचारोंको प्रकट करनेके लिये बाध्य हुआ हूँ।

शास्त्रोंमें द्रव्यपूजाका अष्टद्रव्यसे करनेका विधान पाया जाता है और हमारा श्रद्धालु समाज बिना किसी तर्क-वितर्कके निःसंकोच अर्हन्त, सिद्ध, गुरु, शास्त्र, धर्म, व्रत, रत्नत्रय, तीर्थस्थान आदिकी पूजा करते समय निश्चित अष्टद्रव्योंको उपयोगमें लाता है। समाजके उदार हृदयमें यह विचार ही पैदा नहीं होता कि ये वस्तुयें जिसके लिये अर्पण की जा रही हैं वह जड़ हैं या चेतन हैं अथवा आत्माकी अवस्थाविशेष हैं। अर्हन्त, सिद्ध, शास्त्र, धर्म, व्रत, रत्नत्रय व तीर्थस्थानोंको जलादि अष्टद्रव्यका अर्पण करना बुद्धिगम्य कहा जा सकता है या नहीं? परन्तु तर्कशील लोगोंने इसके ऊपर हमेशासे आक्षेप उठाये हैं और वे आज भी उठाते चले जा रहे हैं। उन आक्षेपोंका यथोचित समाधान न होनेके कारण ही एक संप्रदायमें मूर्तिमान्यताके विरोधी दलोंका आविष्कार हुआ है। जैनियोंके श्वेताम्बर सम्प्रदायमें ढूँढिया पंथ और दिग्म्बर सम्प्रदायमें तारण पंथ इन आक्षेपोंके समाधान न होनेके ही फल हैं। केवल जैनियोंमें ही नहीं, जैनैतरोंमें भी इस प्रकारके पंथ कायम हुए हैं, परन्तु यह संभव है कि जैनैतरोंमें विरोधके कारण जैनियोंसे भिन्न हैं।

कुछ भी हो, परन्तु जैन सिद्धान्त इस बातको नहीं मानता कि जो द्रव्य भगवानके लिये अर्पण किया जाता है वह उनकी तृप्तिका कारण होता है, कारण कि उनमें इच्छाका सर्वथा अभाव है। इसलिये कोई भी बाह्य वस्तु उनकी तृप्तिका कारण नहीं हो सकती, उनकी तृप्ति तो स्वाभाविक ही है। इसलिये अपने विचारों व आचरणोंको पवित्र व उन्नत बनानेके लिये भगवानके गुणोंका स्मरण (भावपूजा) ही पर्याप्त है। भगवानके गुणस्मरणमें मूर्ति सहायक है, मूर्तिको देखकर गुणस्मरणमें हृदयका झुकाव सरलतासे हो जाता है। इसलिये भगवानके गुणोंका स्मरण करते समय मूर्तिका अवलम्बन युक्ति और अनुभव विरुद्ध नहीं, परन्तु ऊपर बतलाये

२ : सरस्वती-वरबुत्र पं० बंशीधर व्याकरणाचार्य अभिनन्दन-ग्रन्थ

हुये उद्देश्यकी सिद्धिमें जब बाह्य सामग्रीका कोई उपयोग नहीं, तब भगवदाराधनमें बाह्य सामग्रीका समावेश क्यों किया गया है? इस आक्षेपका यथोचित समाधान न मिलनेके कारण जैनियोंमें द्रव्यपूजाके बजाय मूर्ति-मान्यताके विरोधी पंथ बन गये हैं।

तात्पर्य यह कि मूर्तिकी मान्यताको अनिवार्य रूपसे प्रत्येक व्यक्तिके हृदयमें स्थान है। यह निश्चित है कि मूर्तिमान्यताके विरोधी स्वयं मूर्तिकी मान्यताको छोड़ नहीं सकते, बल्कि आवश्यकतानुसार उसका उपयोग ही करते रहते हैं। मूर्ति मुख्य वस्तुका प्रतिनिधि होती है, जो हमको मुख्य वस्तुके किसी निश्चित उद्दिष्ट स्वरूप तक पहुँचानेमें समर्थ है। किसी वस्तुका प्रतिनिधि आवश्यकता व उद्देश्यके अनुकूल सचेतन व अचेतन दोनों पदार्थ हो सकते हैं। एक वस्तुके समझनेमें जो दृष्टान्त वगैरहका उपयोग किया जाता है उससे मूर्ति मान्यताका अकाट्य समर्थन होता है। परन्तु द्रव्यपूजाके विषयमें कई तरहके आक्षेप उठाये जा सकते हैं, जिनका समाधान हो जानेपर ही द्रव्यपूजा उपयोगी मानी जा सकती है। नीचे सम्भवित आक्षेपोंके समाधान करनेका ही प्रयत्न किया जाता है।

आक्षेप १—जबकि भगवानमें इच्छाका सर्वथा अभाव है तो उनके उद्देश्यसे मूर्तिके समक्ष मंत्रोच्चारण-पूर्वक नाना उत्तमोत्तम पदार्थ रख देनेपर भी वे उनको तृप्तिके कारण नहीं हो सकते, मूर्ति तो स्वयं अचेतन पदार्थ है, इसलिये उसके उद्देश्यसे इन पदार्थोंके अर्पण करनेकी भावना ही पूजकके हृदयमें पैदा नहीं हो सकती और न वह इस अभिप्रायसे ऐसा करता ही है। इसलिये भगवानकी पूजा अष्टद्रव्यसे (द्रव्यपूजा) नहीं करनी चाहिए।

इस आक्षेपका समाधान कई प्रकारसे किया जाता है। परन्तु वे प्रकार सन्तोषजनक नहीं कहे जा सकते। जैसे—

समा० १—जिनेन्द्र भगवान तृषा आदि दोषोंके विजयी हैं। इसलिये वे हमारे तृषा आदि दोषोंके नष्ट करनेमें सहायक हों, इस उद्देश्यसे पूजक उनकी मूर्तिके समक्ष अष्टद्रव्य अर्पण करता है।

आलोचना—यह तो माना जा सकता है कि जिनेन्द्र भगवान तृषा आदि दोषोंके विजयी हैं, परन्तु उनको अष्टद्रव्य चढ़ा देने मात्रसे हमारे दोष भी नष्ट हो जायेंगे, यह बात तर्क और अनुभवकी कसौटीपर नहीं टिक सकती।

समाधान २—जिनेन्द्र भगवानको अष्टद्रव्य इसलिए चढ़ाये जाते हैं कि इसके द्वारा पूजकमें बाह्य वस्तुओंसे रागपरिणति घटकर त्यागबुद्धि पैदा हो जाती है जो कि तृषा आदि दोषोंके नाश करनेका प्रधान कारण है।

आलोचना—यह समाधान भी ठीक नहीं, कारण कि शास्त्रोंका स्वाध्याय विद्वानोंके उपदेश व जिनेन्द्र भगवानके गुणोंका स्मरण आदि ही बाह्य वस्तुमें हमारी रागपरिणति घटाने व त्यागबुद्धि पैदा करनेके यथोचित कारण हो सकते हैं।

समाधान ३—दानकी परिपाटी चलानेके लिए यह एक निमित्त है।

आलोचना—ऐसे निरर्थक दान (जिनका कि कोई उपयोग नहीं) की कोई सराहना नहीं करेगा। वास्तविक दान बाह्य वस्तुओंमें अपनी ममत्वबुद्धिको नष्ट करना हो सकता है। यह तो हम करते नहीं। और न इस तरहसे यह नष्ट की जा सकती है। यह तो शास्त्रस्वाध्याय, उपदेश व जिनेन्द्र भगवानके गुण-स्मरण आदिसे ही होगी, ऐसा पहले बतलाया जा चुका है। व्यावहारिक दान दूसरे प्राणियोंकी आवश्यकताओं-

की यथाशक्ति पूति करना कहा जाता है। जिनेन्द्र भगवान् कृतकृत्य हैं उनकी कोई ऐसी आवश्यकता नहीं, जिसकी पूति हमारे अष्टद्रव्यके अर्पण करनेसे होती हो, इसलिए ऐसा दान निरर्थक ही माना जायगा।

समाधान ४—भगवान्के गुण स्मरणमें बाह्य सामग्रीसे सहायता मिलती है, इसलिये पूजक भगवान्को अष्टद्रव्य अर्पण करता है।

आलोचना—गुणस्मरणका अवलम्बन मूर्ति तो है ही तथा स्तोत्रपाठ वगैरहसे गुण-स्मरण किया जाता ही है, बाह्य सामग्रीकी उपादेयता इसमें कुछ भी नहीं है। बल्कि जब पूजक भगवान्के लिये अष्टद्रव्य अर्पण करता है तो द्रव्यपूजा यह उनकी वीतरागताको नष्ट कर उनको सरागी सिद्ध करनेकी ही कोशिश है।

समाधान ५—पूजक भक्तिके आवेशमें यह सब किया करता है, इसका ध्यान इसकी हेयोपादेयता तक पहुँचता ही नहीं और न भक्तिमें यह आवश्यक ही है, इसलिये द्रव्यपूजाके विषयमें किसी तरहके आक्षेपोंका उठाना ही व्यर्थ है।

आलोचना—भक्तिमें विवेक जाग्रत रहता है, विवेकशून्य भक्ति हो ही नहीं सकती। जहाँ विवेक नहीं है उसको भक्ति न कहकर मोह ही कहा जायगा, इसलिये यह समाधान भी उचित नहीं माना जा सकता है।

इसके पहले कि इस आक्षेपका समाधान किया जाय, दूसरे आक्षेपोंपर भी दृष्टि डाल लेना आवश्यक है—

आक्षेप २—प्रतिमामें जब भगवान्की स्थापना की जा चुकी है और वह पूजकके सामने है तो फिर अवतरण, स्थापन और सन्निधिकरणकी क्या आवश्यकता रह जाती है ?

समाधान—जिनकी प्रतिमा पूजकके सामने है उनकी पूजा करते समय अवतरण, स्थापन और सन्निधिकरण नहीं करना चाहिये, लेकिन जिनकी पूजा उनकी प्रतिमाके अभावमें भी यदि पूजक करना चाहता है तो उनकी अतदाकारस्थापना पुष्पोंमें कर लेना आवश्यक है, इसलिये अवतरण स्थापना और सन्निधिकरणकी क्रिया करनेका विधान बतलाया गया है।

आलोचना—एक तो यह कि किन्हीं भी भगवान्की पूजा करते समय—चाहे उनकी प्रतिमा सामने हो, या न हो—समान रूपसे अवतरण आदि तीनों क्रियायें की जाती हैं, इसलिये बिना प्रबल आधारके यह मानना अनुचित है कि जिनकी प्रतिमा न हो, उनकी पूजा करते समय ही पुष्पोंमें अतदाकारस्थापनाके लिए अवतरण आदि क्रियायें करनी चाहिये।

दूसरे यह कि जब पूजक भावोंकी स्थिरताके लिए केवल भगवान्की पुष्पोंमें अतदाकारस्थापना करता है, तो इतना अभिप्राय स्थापन और सन्निधिकरणमेंसे किसी एक क्रियासे ही सिद्ध हो सकता है। इन दोनोंमेंसे कोई एक तथा अवतरणकी क्रिया निरर्थक ही मानी जायगी। इस समाधानको माननेसे स्थापन और सन्निधिकरण दोनोंका एक स्थानमें प्रयोग लोक-व्यवहारकी दृष्टिसे भी अनुचित मालूम पड़ता है। लोकव्यवहारमें जहाँ समानताका व्यवहार है वहाँ तो पहले “आइये बैठिये” कहकर, “यहाँ पासमें बैठिये” ऐसा कहा जा सकता है परन्तु अपनेसे बड़ोंके प्रति ऐसा व्यवहार कभी नहीं किया जायगा।

बहुतसे लोग “मम सन्निहितो भव” इस वाक्यका अर्थ करते हैं “हे भगवान् मेरे हृदयमें विराजो”। लेकिन यह अर्थ भी ठीक मालूम नहीं पड़ता है, कारण कि एक तो इधर हम पुष्पोंमें भगवान्का आरोप कर रहे हैं और उधर उनको हृदयमें स्थान दे रहे हैं ये दोनों बातें विरोधी हैं। दूसरे पूजक हृदयमें स्थापित

भगवानको लक्ष्य करके द्रव्य नहीं चढ़ाता, उसका लक्ष्य तो उस समय प्रतिमाकी ओर ही रहता है। इसलिये दूसरे आक्षेपका भी समाधान ठीक-ठीक नहीं होता है।

आक्षेप ३—भगवान क्या हमारे बुलानेसे आते हैं और हमारे विसर्जन करनेपर चले जाते हैं ? यदि हाँ, तो जैन सिद्धान्तसे इसमें जो विरोध आता है उसका क्या परिहार होगा ? यदि नहीं, तो फिर अवतरण व विसर्जन करनेका क्या अभिप्राय है ?

आक्षेप ४—आजकल जो प्रतिमायें पायी जाती हैं उनको यदि हम अरहन्त व सिद्ध अवस्थाकी मानते हैं तो इन अवस्थाओंमें अभिषेक करना क्या अनुचित नहीं माना जायगा ? यह आक्षेप अभी थोड़े दिन पहले किसी महाशयने जैनमित्रमें भी प्रकट किया है।

ये चारों आक्षेप बड़े महत्त्वके हैं, इसलिये यदि इनका समाधान ठीक तरहसे नहीं हो सकता है, तो निश्चित समझना चाहिये कि हमारी द्रव्यपूजा तर्क एवं अनुभवसे गम्य न होनेके कारण उपादेय नहीं हो सकती है। परन्तु उद्देश्यकी सफलताके लिये रत्नत्रयवाद, पदार्थोंकी व्यवस्थाके लिए निक्षेपवाद तथा उनके ठीक-ठीक ज्ञानके लिए प्रमाणवाद और नयवाद तथा अनेकान्तवाद, सप्तभंगीवाद आदिका तर्क और अनुभवपूर्ण व्यवस्थापक जैनधर्म इस विषयमें अधूरा ही रहेगा, यह एक आश्चर्यकी बात होगी। इसलिये मेरे विचारसे जैन सिद्धान्ता-नुसार द्रव्यपूजाका रहस्य होना चाहिये, वह नीचे लिखा जाता है।

द्रव्यपूजा निम्नलिखित सात अंगोंमें समाप्त होती है—१ अवतरण, २ स्थापन, ३ सन्निधिकरण, ४ अभिषेक, ५ अष्टक, ६ जयमाला और ७ विसर्जन। शान्तिपाठ व स्तुतिपाठ जयमालाके बाद उसीका एक अंग समझना चाहिये। यद्यपि अभिषेककी क्रिया हमारे यहाँ अवतरणके पहलेकी जाती है। परन्तु यह विधान शास्त्रोक्त नहीं। शास्त्रोंमें सन्निधिकरणके बाद ही चौथे नंबर पर अभिषेककी क्रियाका विधान मिलता है। द्रव्यपूजाके ये सातों अंग हमको तीर्थकरके गर्भसे लेकर भुक्ति पर्यन्त माहात्म्यके दिग्दर्शन कराने, धार्मिक व्यवस्था कायम रखने व अपना कल्याणमार्ग निश्चित करनेके लिये हैं—ऐसा समझना चाहिये।

यह निश्चित बात है कि संसारमें जिसका व्यक्तित्व मान्य होता है वही व्यक्ति लोकोपकार करनेमें समर्थ होता है, उसीका प्रभाव लोगोंके हृदयको परिवर्तित कर सकता है, अतएव तीर्थकरके गर्भमें आनेके पहलेसे उनके विषयमें असाधारण घटनाओंका उल्लेख शास्त्रोंमें पाया जाता है। १५ मास असंख्य रत्नोंकी वृष्टि, जन्म समय पर १००८ बड़े-बड़े कलशों द्वारा अभिषेक आदि क्रियायें उनके आश्चर्यकारी प्रभावकी द्योतक नहीं तो और क्या हैं ? वर्तमानमें हमलोग भी उनके व्यक्तित्वको समझनेके लिये तथा आचार्यों द्वारा शास्त्रोंमें गूँथे हुए उनके उपदिष्ट कल्याणमार्गपर विश्वास करने व उसपर चलनेके लिए और “परंपरामें भी लोग कल्याणमार्गसे विमुख न हो जावे” इसलिए भी साक्षात् तीर्थकरके अभावमें उनकी मूर्ति द्वारा उनके जीवनकी असाधारण घटनाओं व वास्तविकताओंका चित्रण करनेका प्रयत्न करें, यही द्रव्यपूजाके विधानका अभिप्राय है। हमारा यह प्रयत्न नित्य और नैमित्तिक दो तरहसे हुआ करता है। नैमित्तिक प्रयत्नमें तीर्थकरके पंच-कल्याणकोंका बड़े समारोहके साथ विस्तारपूर्वक चित्रण किया जाता है तथा प्रतिदिनका हमारा यह प्रयत्न संक्षेपसे आवश्यक क्रियाओंमें ही समाप्त हो जाता है।

१—हमारी द्रव्यपूजा नित्य प्रयत्नमें शामिल है। इसमें सबसे पहले अवतरणकी क्रिया की जाती है। इस समय पूजक यह समझकर कि तीर्थकरपर्यायको धारण करनेके सम्मुख त्रिशिष्ट पुण्याधिकारी देव स्वर्गसे अवरोहण करनेवाला है, प्रतिमामें तीर्थकरके प्राङ्मुखका दर्शन करता हुआ अपरिमित हर्षसे ‘अत्र अवतर-अवतर’ कहता हुआ पुष्प वर्षा करके अवतरण महोत्सव मनावे।

२—दूसरी क्रिया स्थापनकी है। इस समय पूजक यह समझकर कि तीर्थकर माताके गर्भमें आ रहे हैं। प्रतिमामें गर्भप्रवेशोन्मुख तीर्थकरके रूपको देखता हुआ बड़े आनन्दके साथ “अत्र तिष्ठ-तिष्ठ” कहता हुआ पुष्पवर्षा करके गर्भस्थिति-महोत्सव मनावे।

३—तीसरी क्रिया सन्निधिकरणकी है। जिस प्रकार तीर्थकरका जन्म हो जानेपर अभिषेकके लिए सुमेरु पर्वतपर ले जानेके उद्देश्यसे इन्द्र उनको अपनी गोदमें लेता है उसी प्रकार इस क्रियाके करते समय पूजक यह समझकर कि “तीर्थकरका जन्म हो गया है” प्रतिमामें जन्मके समयके तीर्थकरकी कल्पना करता हुआ उनके जन्म-अभिषेककी क्रिया सम्पन्न करनेके लिये “मम सन्निहितो भव-भव” कहकर पुष्पवर्षा करते हुए प्रतिमाको यथास्थानसे उठाकर अपनी गोदीमें लेता हुआ बड़े उत्साहके साथ सन्निधिकरण-महोत्सव मनावे।

इसके अनन्तर वह कल्पित सुमेरु पर्वतकी कल्पित पांडुक शिलापर इस प्रतिमाको स्थापन करे।

४—चौथी क्रिया अभिषेककी है। इस समय पूजक घंटा, वादित्र आदिके शब्दोंके बीच मंगलपाठका उच्चारण करता हुआ बड़े समारोहके साथ प्रतिमाका अभिषेक करके तीर्थकरके जन्माभिषेककी क्रिया सम्पन्न करें।

यह चारों क्रियायें तीर्थकरके असाधारण महत्त्वको प्रकट करनेवाली हैं। इनके द्वारा पूजकके हृदयमें तीर्थकरके असाधारण व्यक्तित्वकी गहरी छाप लगती है। इसलिये इनका समावेश द्रव्यपूजामें किया गया है। इसके बाद तीर्थकरके गार्हस्थ्य जीवनमें भी कुछ उपयोगी घटनायें घटती हैं। परन्तु असाधारण व नियमित न होनेके कारण उनका समावेश द्रव्यपूजामें नहीं किया गया है।

५—यह क्रिया अष्टद्रव्यके अर्पण करनेकी है। पूजकका कर्तव्य है कि वह इस समय प्रतिमामें तीर्थकरकी निरग्रथ-मुनि-अवस्थाकी कल्पना करके आहारदानकी प्रक्रिया सम्पन्न करनेके लिए सामग्री चढ़ावे। तीर्थकरकी निरग्रथ-मुनि-अवस्थामें इसी तरहकी पूजा उपादेय कही जा सकती है। इसलिए बाह्यसामग्री चढ़ानेका उपदेश शास्त्रोंमें पाया जाता है। इस क्रियाके द्वारा पूजकके हृदयमें पात्रोंके लिए देनेकी भावना पैदा हो। इस उद्देश्यसे ही इस क्रियाका विधान किया गया है।

किसी समय हम लोगोंमें यह रिवाज चालू था कि जो भोजन अपने घर पर अपने निमित्तसे तैयार किया जाता था उसीका एक भाग भगवानकी पूजाके काममें लाया जाता था, जिसका उद्देश्य यह था कि हम लोगोंका आहार-पान शुद्ध रहे, परन्तु जबसे हम लोगोंमें आहारपानकी शुद्धताके विषयमें शिथिलाचारी हुई, तभी से वह प्रथा बन्द कर दी गई है। और मेरा जहाँ तक खयाल है कि कहीं-कहीं अब भी यह प्रथा जारी है।

६—छठी क्रिया जयमालाकी है। जयमालाका अर्थ गुणानुवाद होता है। गुणानुवाद तभी किया जा सकता है जबकि विकास हो जावे। केवलज्ञानके हो जानेपर तीर्थकरके गुणोंका परिपूर्ण विकास हो जाता है। इसलिए जयमाला पढ़ते समय पूजक प्रतिमामें केवलज्ञानी-सयोगी-अर्हन्त तीर्थकरकी कल्पना करके उनके गुणोंका अनुवाद करें। यही उस समयकी पूजा है। तीर्थकरके सर्वज्ञपने, वीतरागपने और हितोपदेशपनेका भाव पूजकको होवे, यह उद्देश्य इस क्रियाके विधानका समझना चाहिए। यही कारण है कि जयमालाके बाद शान्तिपाठके द्वारा जगतके कल्याणकी प्रार्थना करते हुए पूजकको तदनन्तर प्रार्थना पाठके द्वारा आत्मकल्याणकी भावना भगवानकी प्रतिमाके सामने प्रकट करनेका विधान पूजाविधिमें पाया जाता है। जयमाला पढ़नेके बाद अर्घ चढ़ानेकी जो प्रवृत्ति अपने यहाँ पायी जाती है वह ठीक नहीं, क्योंकि अर्हन्त अवस्थामें तीर्थकर कृतकृत्य सर्वाभिलाषाओंसे रहित होनेके कारण हमारे द्वारा अर्पित किसी भी वस्तुको ग्रहण नहीं करते हैं। अतएव केवल

गुणानुवाद करके ही पूजकको यह क्रिया समाप्त करना चाहिए। इसके बाद वह जगतके कल्याणकी भावनासे शान्तिपाठ व इसके बाद आत्मकल्याणकी भावनासे स्तुतिपाठ पढ़े। ये दोनों बातें तीर्थकरकी अरहंत अवस्थामें ही सम्भव हो सकती हैं, कारण कि तीर्थकरका हितोपदेशीपना इसी अवस्थामें पाया जाता है।

७—सातवीं क्रिया विसर्जनकी है। इस समय पूजक यह समझ कर कि भगवानकी मुक्ति हो रही है, अपरिमित हर्षसे पुष्पवर्षा करता हुआ विसर्जनकी क्रियाको समाप्त करें। जयमाला पढ़ते हुए भी यदि पुष्प-वर्षा की जाय तो अनुचित नहीं, क्योंकि उससे हर्षातिरेकका बोध होता है, परन्तु अर्घ चढ़ाना तो पूर्वोक्त रीतिसे अनुचित ही है।

यह हमारी द्रव्यपूजाकी विधिका अभिप्राय है। और पूजकको प्रतिदिन इसी अभिप्रायसे द्रव्यपूजामें भाग लेना चाहिये। ऐसी प्रक्रिया तर्क और अनुभव विरुद्ध नहीं कही जा सकती है। तथा जो चार आक्षेप पहले बतला आये हैं उनका समाधान भी इसके जरिये हो जाता है कारण कि प्रतिमा तीर्थकरकी किसी अवस्था विशेषकी नहीं है वह तो सामान्यतौरपर तीर्थकरकी प्रतिमा है, उसका अवलम्बन लेकर हमलोग अपने लिए उपयोगी तीर्थकरकी स्वर्गावतरणसे लेकर मुक्तिपर्यन्तकी जीवनीका चित्रण किया करते हैं। यदि हम अवतरण करते हैं तो तीर्थकरके स्वर्गसे चय कर गर्भमें आते समय, यदि अभिषेक करते हैं तो तीर्थङ्करके जन्मके समय, यदि सामग्री चढ़ाते हैं तो तीर्थङ्करकी साधु अवस्थामें, जिस तरह अवतरण द्वारा मुक्त तीर्थङ्करको हम बुलाते नहीं, उसी प्रकार विसर्जनके द्वारा भेजते भी नहीं, केवल विसर्जनके द्वारा मोक्ष कल्याणकका उत्सव मनाया करते हैं। इस तरह पूर्वोक्त आक्षेपोंके होनेकी सम्भावना भी हमारी द्रव्यपूजाको प्रक्रियामें नहीं रह जाती है।

ऐसा मान लेनेपर हमारा कर्त्तव्य हो जाता है कि सिद्धोंकी पूजा उनकी प्रतिमाका अवलम्बन लेकर केवल उनके स्वरूपका अनुवाद व चिन्तनमात्रसे करें, तीर्थङ्करके समान अवतरणसे लेकर विसर्जन पर्यन्तकी क्रियाओंका समारोह न करें क्योंकि यह यह प्रक्रिया तो सिर्फ तीर्थङ्करकी पूजामें ही सम्भव है। हमारे शास्त्र एक दूसरे प्रकारसे भी उस अभिप्रायकी पुष्टि करते हैं—

प्रतिमा जितनी बनाई जाती है वे सब तीर्थकरोंकी बनायी जाती हैं और प्रतिष्ठा करते समय तीर्थकरके ही पाँच कल्याणकोंका समारोह किया जाता है, क्योंकि तीर्थकर ही मोक्षमार्गके प्रवर्तक हैं और उन्हींके जीवनमें वह असाधारणता (जिसका कि समारोह हम किया करते हैं) पायी जाती है। सामान्यकेवलियोंकी इस तरहसे प्रतिमामें प्रतिष्ठित नहीं की जाती, क्योंकि वे मोक्षमार्गके प्रवर्तक नहीं माने जाते और न उनका जीवन हो इतना असाधारण रहता है। केवल उन्होंने शुद्ध आत्मस्वरूपकी प्राप्ति कर ली है। उनकी त्याग-वृत्तिका ध्येय भी उनके जीवनमें आत्मकल्याण रहा है, इसके लिये उनकी पूजा केवल सिद्ध-अवस्थाको लक्ष्य करके की जाती है। यही कारण है कि सिद्ध-प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा पंचकल्याणकरूपसे न करके केवल मोक्ष-कल्याणक रूपसे की जाती है। अरहन्त और सिद्धको छोड़कर अन्य किसीकी प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा करनेका रिवाज हमारे यहाँ नहीं है। इसका कारण यह है कि आचार्य, उपाध्याय और मुनि ये तीनों सामान्य तौरसे मुनि ही हैं। मुनियोंका अस्तित्व शास्त्रोंमें पंचमकालके अन्त तक बतलाया है, इसलिये हमारे कल्याणमार्गका उपदेश, जो साक्षात् रूपसे विद्यमान है, उसकी मूर्तिकी आवश्यकता ही क्या रह जाती है? क्योंकि मूर्ति-प्रतिष्ठाका उद्देश्य तो अपने कल्याणमार्गकी प्राप्ति ही है। पूजा करते समय पूजकका कर्त्तव्य यह अवश्य है कि वह जिन तीर्थङ्करकी प्रतिमा अपने समक्ष हो उनकी द्रव्यपूजा ऊपर कहे अभिप्रायको लेकर करे, जिनकी प्रतिमा न हो, उनकी पूजा यदि वह करना चाहता है तो उनकी कल्पना दूसरे तीर्थकरकी

प्रतिमामें करके उनकी द्रव्यपूजा करे, क्योंकि जब हमारी पूजा ही कल्पनामय है तो दूसरे तीर्थङ्करकी प्रतिमामें दूसरे तीर्थङ्करकी कल्पना अपने भावोंकी विशुद्धिके लिये अनुचित नहीं कही जा सकती ।

तथा जिस प्रकार सिद्धोंकी पूजा उनके स्वरूपका अनुवाद व चिंतनमात्र ही युक्ति-अनुभवगम्य कही जा सकती है उसी प्रकार शास्त्रकी पूजा केवल उसकी बाँचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश रूप स्वाध्याय करना ही है । तीर्थक्षेत्रोंकी पूजा उनका अवलंबन लेकर भगवानके गुणोंकी भावना मानना, रत्नत्रयकी पूजा उनकी प्राप्तिका प्रयत्न करना, धर्म व व्रतोंकी पूजा उनका यथाशक्ति पालन करना समझना चाहिये । तीर्थकरोंके समान उनकी अवतरणसे लेकर विसर्जन पर्यन्त सात प्रकारसे द्रव्यपूजा करना तो केवल हमारी तर्क और अनुभवकी शून्यताका द्योतक है । मुझे विश्वास है कि समाज इस तरहसे पूजाके रहस्यको समझ कर इसमें सुधार करनेका प्रयत्न करेगा ।

